क्या डॉलर की सत्ता अंत की ओर बढ़ रही है ?: पच्चीसवाँ न्यूज़लेटर (2024)

चियांग तिएफंग (चीन), स्टोन फॉरेस्ट, 1979

प्यारे दोस्तों,

ट्राईकॉन्टिनेंटल : सामाजिक शोध संस्थान की ओर से अभिवादन

जून के महीने की शुरुआत में एक **अफ़वाह** फैली, जिसे भारतीय मीडिया ने सच्ची खबर बताकर **रिपोर्ट** किया। अफ़वाह थी कि सऊदी अरब ने संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ अपने पेट्रोडॉलर समझौते का समय खत्म होने दिया यानी उसे रद्द होने दिया। 1974 में हुआ यह **समझौता** बहुत सीधा-स्पष्ट है और यूएस सरकार की कई **ज़रूरतों** को पूरा करता है : यूएस सऊदी अरब से तेल खरीदता है, सऊदी अरब इस पैसे का इस्तेमाल हथियार बनाने वाली यूएस की कंपनियों से हथियार खरीदने के लिए करता है और साथ ही तेल बिक्री से हुई आय को यूएस ट्रेजरी बिल के रूप में और पश्चिमी वित्तीय व्यवस्था में ही रखता है। तेल से हुए मुनाफ़े को यूएस अर्थव्यवस्था और पश्चिमी वित्तीय व्यवस्था में ही रीसाइकल करने या घुमाते रहने के इस समझौते को ही दुनिया पेट्रोडॉलर व्यवस्था के नाम से जानती है।

दोनों देशों के बीच के इस गैर-विशिष्ट समझौते का मतलब यह नहीं कि सऊदी सिर्फ डॉलर में ही अपना तेल बेच सकता है या इससे कमाया मुनाफ़ा सिर्फ यूएस ट्रेजरी बिल के रूप में (जो कि इसके पास काफी ज़्यादा **मात्रा** में हैं यानी 13,590 करोड़ डॉलर) और पश्चिमी बैंकों में ही रीसाइकल करने के लिए बाध्य है। सऊदी अपना तेल दूसरी मुद्राओं जैसे यूरो आदि में बेचने के लिए आज़ाद है

और **mBridge** जैसे डिजिटल मुद्रा प्लेटफॉर्म से भी जुड़ सकता है। यह प्लेटफॉर्म बैंक ऑफ इंटरनेशनल सेटलमेंट्स और चीन, थाईलैंड तथा संयुक्त अरब अमीरात (यूएई) के केंद्रीय बैंकों द्वारा शुरू किया गया एक नया प्रयास है।

कुछ भी हो, इस दशकों पुराने पेट्रोडॉलर समझौते के खत्म होने की अफ़वाह दिखाती है कि वित्तीय व्यवस्था में एक बहुत बड़े बदलाव का अंदेशा है, उससे डॉलर-वॉल स्ट्रीट की सत्ता का तख्ता पलट हो सकता है। यह अफ़वाह झूठी थी लेकिन इसके बीच में एक सच की संभावना छिपी है — दुनिया में डॉलर की प्रभुता से मुक्त (जिसे डी-डॉलराइज़ेशन भी कहते हैं) एक नए युग की संभावना।

शू ले (चीन), मैप ऑफ द माउंटेनस् एण्ड सीस्, 2003

पिछले साल अगस्त में ब्रिक्स समूह ने छह देशों को समूह में शामिल होने का न्यौता दिया। इस कदम से भी लगता है यह **बदलाव** आने वाले है। आमंत्रित किए गए देशों में थे ईरान, सऊदी अरब और यूएई, हालांकि सऊदी अरब ने अभी तक सदस्यता ली नहीं है। ब्रिक्स के इस विस्तार से (2022 तक के आँकड़ों के अनुसार) इसमें दुनिया के पहले और दूसरे नंबर के गैस भंडार वाले देश (क्रमश : रूस और ईरान) दोनों होंगे और इसके साथ ही दो ऐसे देश (रूस और सऊदी अरब) भी जो दुनिया भर का एक चौथाई तेल उत्पादन करते हैं। मार्च 2023 में बीजिंग ने ईरान और सऊदी अरब के बीच राजनीतिक संबंध के रास्ते खोले। इससे साफ होता है कि यूएई और सऊदी अरब जैसे यूएस के मित्र

देश अन्य देशों से भी अपने राजनीतिक रिश्तों में विस्तार करने की फिराक में हैं। इससे ही **जाहिर** है कि पेट्रोडॉलर व्यवस्था का शायद अंत आने वाला है। जून में उड़ी इस अफ़वाह के पीछे यही सब कारण थे।

फिर भी इस संभावना को ज़रूरत से ज़्यादा आँका नहीं जाना चाहिए क्योंकि डॉलर-वॉल स्ट्रीट की सत्ता अब भी मज़बूती से क़ायम थी। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के आँकड़ों से **पता चलता** है कि 2023 की अंतिम तिमाही तक आबंटित मुद्रा भंडार में से 58.41% यूएस डॉलर में ही **बरकरार** हैं, जो अन्य मुद्राओं में रखे भंडार से काफी ज़्यादा था। जैसे यूरो (19.98%), जापानी येन (5.7%), ब्रिटिश पाउन्ड स्टर्लिंग (4.8%) और चीनी रॅन्मिन्बी (3%) यूएस डॉलर से काफ़ी कम थे। इसके साथ ही दुनिया में व्यापार में लेनदेन अब भी अधिकतर यूएस डॉलर में ही होता है। दुनिया भर में व्यापार में 40% लेनदेन यूएस डॉलर में होता है जबकि इस पूरे व्यापार में यूएस का हिस्सा सिर्फ 10% ही है। हालांकि डॉलर अब भी प्रमुख मुद्रा बना हुआ है लेकिन इसे दुनिया के अन्य हिस्सों से चुनौतियाँ भी मिल रही हैं। इसका पता इस बात से लगता है कि पिछले बीस सालों में आबंटित मुद्रा भंडार में यूएस डॉलर का हिस्सा धीरे-धीरे ही सही लेकिन लगातार **गिरता** जा रहा है।

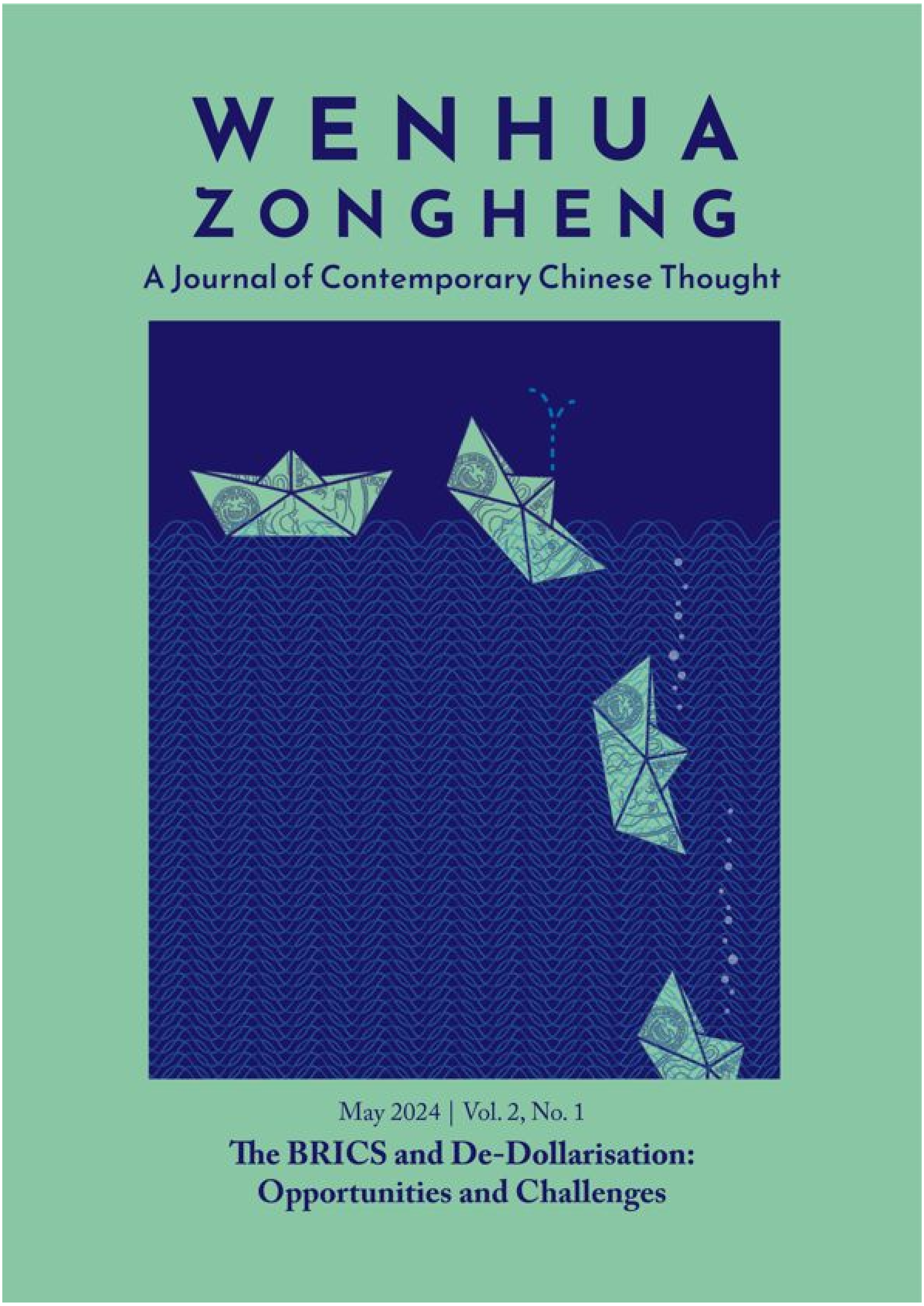

डी-डॉलराइज़ेशन को तीन कारणों से बढ़ावा मिल रहा है : 2008 में **तीसरी महामंदी** के दौर से यूएस

अर्थव्यवस्था की गिरती मज़बूती और संभावनाओं की कमी ; संयुक्त राज्य अमेरिका और इसके ग्लोबल नॉर्थ के साथियों द्वारा बहुत उग्र तरीके से दुनिया के एक-चौथाई देशों के खिलाफ **गैर-कानूनी प्रतिबंध** (खासतौर से वित्तीय प्रतिबंध) लगाना ; और ग्लोबल साउथ के देशों के बीच आपसी संबंधों का विकास और उनमें मज़बूती आना। यह विकास बहुत हद तक ब्रिक्स जैसे समूहों के ज़रिए हुआ है। 2015 में ब्रिक्स ने न्यू डेवलपमेंट बैंक (एनबीडी) की स्थापना की जिसे ब्रिक्स बैंक भी कहा जाता है। इसकी स्थापना करने के पीछे वजह थी डॉलर-वॉल स्ट्रीट की सत्ता के अंत के लिए तैयार होना और ऐसे संस्थानों की स्थापना करना जो विकास को आगे बढ़ाएँ ना कि मितव्ययिता (सरकारी खर्च में कटौती करने की नीति) को। ब्रिक्स के संस्थान बनने से और सरहद-पार व्यापार में स्थानीय मुद्रा का इस्तेमाल बढ़ने से डी-डॉलराइज़ेशन के जल्दी ही होने की उम्मीद खड़ी हो गई। जोहान्सबर्ग में हुए **2023 के ब्रिक्स सम्मेलन** में ब्राज़ील के राष्ट्रपति लुइज़ इनासियो लूला डा सिल्वा ने स्थानीय मुद्रा के इस्तेमाल को बढ़ावा देने और ब्रिक्स की एक अलग मुद्रा व्यवस्था तैयार करने की ज़रूरत को **दोहराया**।

ब्रिक्स संस्थानों से जुड़े लोगों और डी-डॉलराइज़ेशन में दिलचस्पी रखने वाले बड़े देशों, जैसे कि चीन, में डी-डॉलराइज़ेशन को लेकर बहुत जीवंत बहस चल रही है। यह बहस इसकी ज़रूरत, संभावनाओं और दूसरी मुद्राओं में भंडार रखने और वैश्विक व्यापार में लेनदेन के लिए नए तरीके खोजने की समस्याओं को लेकर है। ट्राईकॉन्टिनेंटल : सामाजिक शोध संस्थान और डोंगशेंग के एक साझे प्रयास अंतर्राष्ट्रीय जर्नल वेनहुआ ज़ोंगहेंग (文化纵横) का हालिया **अंक** इसी मुद्दे पर केंद्रित था। 'ब्रिक्स और डी-डॉलरीकरण : अवसर और चुनौतियाँ' (खंड 2, अंक संख्या 1, मई 2024) की **भूमिका** में एनबीडी के पहले उपाध्यक्ष (2015-2017) रहे पाउलो नोगीरा बतिस्ता जूनियर ने डॉलर-वॉल स्ट्रीट की सत्ता से अलग होने की ज़रूरत और इस परिवर्तन की राजनीतिक तथा तकनीकि परेशानियों के बारे में अपने **विचारों** को संक्षेप में रखा। उन्होंने सही ही कहा कि ब्रिक्स विभिन्न तरह के देशों का एक समूह है जिसके सदस्य राष्ट्रों में विभिन्न तरह की राजनीतिक ताकतों का शासन है। ग्लोबल साउथ के **नए रुझानों** के बावजूद ब्रिक्स के सदस्यों के राजनीतिक एजेंडे काफी अलग हैं, खासतौर से उनके आर्थिक सिद्धांत बेहद अलग हैं। ब्रिक्स के कई सदस्य अब भी पूरी तरह से नवउदारवादी फॉर्मूले पर चल रहे हैं जबकि कुछ अन्य सदस्य **विकास के नए मॉडल** खोज रहे हैं। नोगीरा ने एक बहुत अहम बात की कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका 'अपनी पूरी ताकत लगाकर डॉलर को अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा व्यवस्था के राजा के पद से अपदस्त करने की कोशिशों के खिलाफ लड़ेगा'। इसके लिए वो प्रतिबंधों और राजनायिक धमकियों का इस्तेमाल करेगा। इससे उन सरकारों के हौंसले डगमगाएंगे जिनकी राजनीतिक प्रतिबद्धता मज़बूत नहीं है और जिनके पीछे दुनिया के एक नए स्वरूप के लिए प्रतिबद्ध लोकप्रिय आंदोलनों की ताकत नहीं है।

हंग लियो (चीन), सिस्टर्स, 2000

साल 2022 तक डी-डॉलराइज़ेशन बहुत धीमी रफ़्तार से हो रहा था, लेकिन फिर ग्लोबल नॉर्थ के राष्ट्रों ने डॉलर-वॉल स्ट्रीट के वित्तीय तंत्र में जमा रूस की परिसंपत्तियों को ज़ब्त करना शुरू कर दिया और इससे दुनिया के कई देश उत्तरी अमेरिका और यूरोपीय बैंकों में पड़ी अपनी परिसंपत्तियों की सुरक्षा को लेकर घबरने लगे। हालांकि ये ज़ब्ती कोई नई बात नहीं थी (उदाहरण के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका ने ऐसा ही क्यूबा और अफ़ग़ानिस्तान के साथ भी किया था), लेकिन इस बार जिस स्तर और सख़्ती से यह सब किया गया वो नोगीरा के शब्दों में 'विश्वास टूटने' का एक कारण बन गया।

नोगीरा की भूमिका के बाद दुनिया के स्वरूप में आ रहे मौजूदा बदलाव पर तीन चीनी विचारकों के लेख हैं। 'डी-डॉलराइज़ेशन पर ब्रिक्स की बहस का कारण क्या है?' लेख में डिंग यिफान (बीजिंग के **ताईही इंस्टिटयूट** में सीनियर फ़ेलो) **बताते हैं** कि ग्लोबल साउथ क्यों स्थानीय मुद्रा में व्यापार करना चाहता है और क्यों डॉलर-वॉल स्ट्रीट सत्ता पर निर्भरता को कम करना चाहता है। डॉलर दुनिया की प्रमुख मुद्रा के तौर पर बरकरार रहेगा या नहीं यह सवाल खड़े होने के दो कारणों पर वे ज़ोर देते हैं: पहला, यूएस की अर्थव्यवस्था का कमज़ोर होना क्योंकि वह ऐसे निवेश नहीं करती जिससे कुछ बेहतर फल मिले, बल्कि काफी हद तक सैन्य खर्च पर निर्भर है (यह दुनिया के सैन्य खर्च का **53.6%** है), और दूसरा, करार तोड़ने का यूएस का इतिहास।

अपने लेख के अंत में डिंग इस संभावना के बारे में चर्चा करते हैं कि ग्लोबल साउथ के देश चीनी मुद्रा रॅन्मिन्बी (RMB) को व्यापार के लिए अपना सकते हैं क्योंकि चीन की उत्पादन क्षमता की वजह से चीनी माल खरीदने के लिए RMB की अहमियत बढ़ जाती है।

इसके बावजूद प्रोफेसर यू योंगडिंग (**चाइनीज अकैडमी ऑफ सोशल साइंसेज़** के सदस्य) अपने **लेख** 'चीन का विदेशी मुद्रा भंडार : अतीत और वर्तमान सुरक्षा चुनौतियाँ' में डॉलर को हटाकर RMB को उसकी जगह लाने की संभावना को लेकर कुछ सतर्कता दिखाते हैं RMB के अंतर्राष्ट्रीय भंडार की मुद्रा बनने पर यू का मत है, 'चीन को बहुत सारी पूर्वशर्तें पूरी करनी पड़ेंगी, जिसमें शामिल है एक स्वस्थ पूँजी बाज़ार स्थापित करना (खासतौर से एक सूक्ष्म और नकदी से भरपूर ट्रेजरी बॉन्ड बाज़ार), एक लचीली एक्सचेंज रेट व्यवस्था, अंतर्राष्ट्रीय पूँजी की आज़ाद आवाजाही, और बाज़ार में लंबी अवधि ऋण की व्यवस्था'। इस सबका मतलब होगा चीन को अपने पूँजी नियंत्रण में कुछ ढील देनी पड़ेगी और अंतर्राष्ट्रीय खरीदारों को RMB ट्रेजरी बॉन्ड बेचना शुरू करना पड़ेगा। यू का मत है कि RMB का अंतर्राष्ट्रीयकरण 'के उद्देश्य को पूरा करने की कोशिश की जानी चाहिए', लेकिन यह कम समय में हासिल नहीं किया जा सकेगा। काव्यात्मक भाषा में वे लिखते हैं, 'सुदूर के चश्मे से अभी की प्यास नहीं बुझ सकती'।

शू दे छी (चीन), चाइना फ्लावर, 2007

आखिर यहाँ से आगे का रास्ता क्या होगा? अमेरिका के ड्यूक विश्वविद्यालय में पढ़ाने वाले प्रोफेसर गाओ बाई अपने **लेख** 'जोखिम-मुक्ति से डॉलर-मुक्ति तक : ब्रिक्स मुद्रा और अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय व्यवस्था का भविष्य' में इस बात से सहमति जताते हैं कि डॉलर-वॉल स्ट्रीट की सत्ता को खत्म करना बहुत ज़रूरी हो चुका है और इस समय ऐसा कर पाने का कोई आसान रास्ता दिखाई नहीं देता। स्थानीय मुद्रा का इस्तेमाल बढ़ गया है — जैसे रूस और चीन के बीच और साथ ही रूस

और भारत के बीच भी — लेकिन ऐसे द्विपक्षीय समझौते नाकाफ़ी हैं। विश्व स्वर्ण परिषद की एक हाल ही में छपी **रिपोर्ट** से पता चलता है कि दुनिया भर के केंद्रीय बैंक अपने भंडार के लिए सोना खरीद रहे हैं और इससे सोने का भाव बढ़ रहा है (एक आउन्स यानी लगभग 28 ग्राम सोने की कीमत आज 2,300 डॉलर से ज्यादा है जबकि 2015 में ये लगभग 1,200 डॉलर के आस-पास थी)। गाओ का मत है कि अगर यूएस डॉलर की जगह लेने के लिए कोई मुद्रा मौजूद नहीं है तो ग्लोबल साउथ के देशों को 'अपनी मुद्राओं में हिसाब-किताब करने के लिए संदर्भ मूल्य स्थापित कर लेने चाहिए और इन लेन-देन को समर्थन देने के लिए एक प्लेटफॉर्म भी तैयार करना चाहिए। इस तरह के एक मूल्यांकन की माँग ब्रिक्स मुद्रा तैयार करने के लिए अवसर बन सकती है'।

वेनहुआ ज़ोंगहेंग का नया अंक डॉलर-वॉल स्ट्रीट सत्ता और इसके विकल्प की समस्याओं से जुड़े सवालों पर साफ और विचारशील आंकलन पेश करता है। इसमें मौजूद विभिन्न तरह के विचारों से साफ पता चलता है कि दुनिया भर में नीति पर चर्चा करने वाले लोगों में कितनी जीवंत बहस चल रही है। हम इन विचारों को संक्षिप्त करने और यह देखने के लिए आतुर हैं कि ये कितने तकनीकी और राजनीतिक तौर पर कितने व्यावहारिक हैं।

आईरीन चोउ (चीन), द यूनवर्स इस माय माइन्ड, 2002

यहाँ यह याद रखना ज़रूरी है कि दो ब्रिक्स देशों में इस साल नई सरकारें **चुनकर** आई हैं। भारत में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में एक बार फिर अतिवादी दक्षिणपंथी सरकार लौटी है, लेकिन इस बार बहुत कम जनादेश के साथ। मोदी सरकार ने 'राष्ट्रीय हित' को ऊपर रखने की नीति पेश की है इसलिए लगता है कि यह ब्रिक्स में भूमिका बरकरार रखेगी और रूस से स्थानीय मुद्रा में तेल जैसी चीजें खरीदना जारी रखेगी। जबकि दूसरी तरफ दक्षिण अफ्रीका में सत्ताधारी अफ्रीकन नैशनल कॉंग्रेस (ANC) के नेतृत्व वाले गठबंधन ने दक्षिण पंथी डेमक्रैटिक अलाइअन्स के साथ एक गठजोड़ कर लिया है। डेमक्रैटिक अलाइअन्स यूएस के साम्राज्यवाद को लेकर प्रतिबद्ध है और ब्रिक्स के एजेंडे को लेकर गंभीर नहीं। ब्रिक्स समूह में नाइजीरिया के **शामिल** होने की संभावना से

अफ्रीकी महाद्वीप में ब्रिक्स की धुरी शायद उत्तर की तरफ खिसक सकती है।

दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद पर टिकी सरकार के खिलाफ संघर्ष के कठिन दौर में ANC सदस्य लिंडिवे माबुज़ा (जिन्हें सोनो मोलेफे नाम से भी जाना जाता है) ने ANC कैम्पों में महिलाओं की लिखी कविताएँ इकट्ठा करना शुरू किया। गुरिल्ला लड़ाकों, शिक्षकों, नर्सों और तमाम लोगों ने कविताएँ भेजीं जिन्हें बाद में माबुज़ा ने मालीबोंगवे (यशगान) के नाम के संकलन में छापीं। यह नाम जुड़ा हुआ है 1956 में प्रिटोरिया में निकली महिलाओं की रैली से। किताब की भूमिका में माबुज़ा (1938-2021) लिखती हैं कि संघर्ष में 'कुछ रूमानी नहीं होता', होता है तो 'बस चकनाचूर कर देने वाला यथार्थ'। इस वाक्यांश 'चकनाचूर कर देने वाला यथार्थ', इस पर आज के दौर में गौर किया जाना चाहिए। शून्य से कुछ नहीं निकलता। आपको यथार्थ को तोड़कर ही कुछ नया पैदा करना पड़ता है, फिर वो चाहे भारत और दक्षिण अफ्रीका की तरह एक नई राजनीतिक शुरुआत का मौका हो या डॉलर-वॉल स्ट्रीट की सत्ता से परे एक नया वित्तीय ढाँचा।

स्नेह-सहित,

विजय